RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-03
Issue-02
February-2018

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com [UGC Listed Journal]

हिंदी के आंचलिक उपन्यासों की रचना प्रक्रिया

डॉ. अनिल सिंह

अध्यक्ष,हिन्दी-विभाग, सोनुभाऊ बसवंत महाविद्यालय, शहापुर, ठाणे (महाराष्ट्र)

उपन्यास शब्द अंग्रेजी के 'Novel' शब्द का पर्यायवाची है । जिसका अर्थ नया नूतन होता है । बंगाल से प्रेरित होकर यह विद्या फलीभूत हुई है। उपन्यास एक ऐसी विधा है, जिसमें जीवन के विविध-रंग की छाप स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है । 'उपन्यास' का शाब्दिक अर्थ देखें तो, 'उप' का अर्थ है निकट, 'न्यास' का अर्थ रखता है, अर्थात जो साहित्य-विद्या मानवीय गुणों से पाठकों के एकदम करीब हो, अपना बना ले। प्रेमचंद ने ठीक कहा है - "मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।"[1]

पूर्व प्रेमचंद युगीन उपन्यासों को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि ये उपन्यास पूर्णत: तिलस्मी, जासूसी और अय्यारी पृष्ठभूमि पर ही आधारित थे। प्रेमचंद युग में उक्त पृष्ठभूमि से निकलकर यह विद्या मानव समाज के जीवन यथार्थ से जुड़ जाती है। प्रेमचंद ने आदर्शोन्मुख यथार्थ का चित्रण करके यह प्रमाणित कर दिया कि देश का आम आदमी अत्याचार और शोषण की पाटी में किस तरह पिस रहा है। न चाहते हुए भी उसे पिसने के लिए बाध्य होना पड़ता है। प्रेमचंदोत्तर उपन्यासकारों ने मानव मनोविज्ञान, मार्क्सवाद आदि विचारों से उत्प्रेरित आंचलिकता जैसे नवीन उपन्यास धारा को बड़ी सशक्त शैली में अभिव्यक्ति प्रदान की। स्थानीय अंचल को, इस रूप में उजागर किया गया कि आगे चलकर यही आंचलिक प्रयोग एक विशिष्ट विधागत शैली बनकर उभरी जिसे हिंदी में आंचलिक उपन्यास के नाम से पुकारा जाने लगा।

आंचलिक उपन्यास हिंदी कथा साहित्य की नवीनतम विधा है। इसके विकास में जहाँ एक ओर स्वातंत्र्योत्तर राजनैतिक, सामाजिक परिस्थितियाँ हैं, वहीं वाह्य प्रभाव भी स्पष्ट देखा जा सकता है। 'आंचलिक' शब्द 'अंचल' से बना है। साहित्यिक संदर्भ में इसका अर्थ है - क्षेत्रीय या जनपदीय। कुछ उपन्यासों में किसी प्रदेश विशेष का यथा तथ्य और बिंबात्मक चित्रण प्रमुखता प्राप्त कर लेता है और उन्हें प्रादेशिक या आंचलिक उपन्यास कहा जाता है। परंतु यह उपन्यास सामाजिक या ऐतिहासिक होते हैं और चारित्रिक के अंतर्गत आते हैं क्योंकि पात्रों के चरित्र चित्रों को यथार्थता प्रदान करने के लिए ही उनकी वाह्य परिस्थितियों को जीवंत रूप में चित्रित किया जाता है।"[2] आंचलिक शब्द गहरे अंचल विशेष के अर्थों से जुड़ा हुआ है। डॉ. नागनाथ कुंटे की मान्यता है - "किसी भी देश के एक प्रांत या भाग के अर्थ में प्रयुक्त होने वाला अंचल शब्द संस्कृत तथा हिंदी दोनों भाषाओं में समान अर्थ का सूचक है। अपने व्युत्पत्तिगत अर्थ में यह शब्द आंचल, पल्ला, साड़ी का छोर, देश का प्रांत, भाग, किनारा या सीमा का समीपवर्ती भाग का अर्थ घोषित करता है किंतु लाक्षणिक रूप में इसका अर्थ विस्तार उस परिकल्पना की ओर संकेत करता है जो आंचलिकता की अर्थभूमि से संबंधित है। साहित्य में जब अंचल या आंचलिक शब्द का प्रयोग किया जाता है तब उसका प्रयोजन अभिधेय अर्थ से होकर लक्षणामूलक अर्थ से होता है। अंचल शब्द का अभिधेय अर्थ है - वस्त्र का प्रांत भाग। जब हम उससे देश के प्रांत भाग का अर्थ लेते हैं तो मुख्यार्थ बाधित होता है, परंतु देश को वस्त्र के प्रान्त भाग के संबंध में रखकर प्रयोजनानुसार वांछित अर्थ प्रकट होता है। इसी प्रकार आंचलिक विशेषण का अर्थ स्पष्ट हो जाता है, 'अंचल से संबंधित'। यहां ध्यान रखने की बात यह है कि इससे केवल देश के प्रांत, भाग या छोर का ही अर्थ नहीं निकलता वरना कोई भी क्षेत्र विशेष जिसकी अपनी विशिष्ट भौगोलिक, सांस्कृतिक और भाषिक पहचान हो तथा जो अपनी विशिष्टताओं में अपने समीपवर्ती क्षेत्रों से भिन्न हो अंचल कहा जाता है।"[3]

अंचल' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत की 'अंयु' धातु से मानी जाती है। अनेकार्थ होते हुए भी प्राय: विशिष्ट क्षेत्र या जनपदीय विशेषताओं को वहां की बोली भाषा में अभिव्यक्त किया जाता है । डॉ. नगीना जैन की मान्यता है - "आंचलिकता एक विशिष्ट दृष्टिकोण है, जो अंचल या क्षेत्र विशेष की संपूर्ण जीवन प्रणाली की ऐतिहासिक तथा वैज्ञानिक धारणा प्रस्तुत करता है , किसी भी काल में , किसी क्षेत्र -विशेष की संपूर्ण भौगोलिक संस्कृति का निदर्शन कर उसके सामान्य सत्य का उद्घाटन करता है , जहां हर घटना , हर पात्र , हर प्रक्रिया ऐतिहासिक परंपरा से अविच्छिन्न रहकर एक सामान्य सत्य भौगोलिक सीमांत का संकेत करती है।"[4]

अंचल अपनी विविधता और यथार्थ को पूरी समग्रता से अभिव्यक्त करता है जिसका संकेत करते हुए डॉ . रामदरश मिश्र ने लिखा है - "आंचलिक उपन्यासों में अंचल अपनी विविधता और समग्रता के साथ नायक होता है। अंचल के जीवन की सारी परंपराओं, ऐतिहासिक प्रगति यों शक्तियों -अशक्तियों, छवियों-अछवियों को जितनी अधिक सच्चाई से लेखक पकड़ सकेगा , अंचल के चित्रण में वह उतना ही सफल होगा ।"[5] हर अंचल , भूखंड , क्षेत्र विशेष की विशेषताएँ और प्रवृति याँ वहाँ के निवासियों और रहवासियों में स्पष्ट रूप से निहित होगा। यह कोई आवश्यक नहीं है कि वही खूबी , वही गंध, वही परिस्थिति याँ अन्य भूखंड या क्षेत्र में रहने वालों में हो । डॉ. शिवप्रसाद के अनुसार -"यह भावसंज्ञा किसी क्षेत्र या अंचल से समृद्ध

© RRIJM 2015, All Rights Reserved

है। क्षेत्र या भौगोलिक खण्ड को कहते हैं, जो सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से सुगठित और विशिष्ट एक इकाई है। जिसके निवासियों के रहन-सहन विशेषताएँ परस्पर समान और दूसरे क्षेत्र के निवासियों से इतनी भिन्न हो कि इनके आधार पर यह क्षेत्र या अंचल विशेष इसी प्रकार के दूसरे क्षेत्रों से एकदम अलग प्रतीत हो। इस प्रकार के अंचल या क्षेत्र के जीवन को अभिव्यक्त करने वाली रचना को हम आंचलिक कह सकते हैं।"[6]

आंचलिक उपन्यास की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए आचार्य नंददुलारे वाजपेयी ने लिखा है - "आंचलिक उपन्यास वह होता है, जिसमें अपरिचित भूमियों और अज्ञात जातियों का वैविध्यपूर्ण चित्रण हो। आंचलिक उपन्यास की सबसे प्रमुख विशेषता अपरिचित और किसी हद तक आदिम जातियों के जीवन चित्रण में पाई जाती है।"[7] आंचलिक उपन्यास के स्वरूप को रेखांकित करते हुए डॉ. धीरेंद्र वर्मा लिखते हैं कि "उपन्यासों में किसी प्रदेश विशेष का यथातथ्य और बिम्बात्मक चित्रण प्रधानता प्राप्त कर लेता, उन्हें प्रादेशिक या आंचलिक कहा जाता है।"[8]

आंचलिक उपन्यास न केवल हमें उस भूखंड या क्षेत्र विशेष से परिचित कराता है , अपितु उनकी जीवन -शैली, सोच प्रक्रिया को भी उदघाटित करता है। इस संदर्भ में डॉ . ज्ञान चंद्र गुप्त की मान्यता है - "आंचलिकता में परिवेश को पहचानने की एक अंतरंग दृष्टि होती है - जो अंचल के एक -एक पेड़-पौधे, नदी-नाले, फूल-पत्ते, ध्वनि संगीत , पशु पक्षियों के कलरव , दिशाओं के रंग , अंचल के मरम राहट, लोगों के हर्ष-उल्लास के स्वर और उनकी व्यथा कथाओं के रोने , झींकने तक का गहरा साक्षात्कार कराती है। आंचलिकता नए-नए अंचलों को जानने को उत्सुक, अपरिचित भूमियों को कौतूहलपूर्ण उजागर करने को लालायित, रुग्ण या पिछड़े सामाजिक जीवन की अभिलाषी, व्यक्तिवादी साहित्यिक अवधारणा के खिलाफ प्रतिक्रियात्मक दृष्टि पूर्ण वाली, नई भाषिक संरचना के जरिए अंचल को पहचानने और रचने वाली साहित्यिक दृष्टि है।"[9]

आंचलिक उपन्यासों के संकल्पना पर प्रकाश डालते हुए डॉ . नागनाथ कुंटे ने लिखा है -"आंचलिक उपन्यासों का अपना एक चुना हुआ क्षेत्र होता है, जिसकी अपनी भौगोलिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक विशेषताएँ होती हैं। आंचलिक उपन्यासकार का लक्ष्य अंचल या क्षेत्र विशेष के जीवन का समग्र चित्रण करना होता है । क्षेत्र विशेष के रीति -नीति, आचार -विचार, रहन-सहन , सोचने -विचारने का ढंग तथा बोली-वाणी के साथ वहां के निवासियों के जीवन यथार्थ का चित्रण इस रूप में किया जाता है कि अंचल एक जीवंत नायक के रूप में उभरता है।"[10]

विद्वानों की विभिन्न परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि अंचल, भूखंड और क्षेत्र विशेष का चित्रण वहां की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक परिस्थितियों, रीति-रिवाज, जीवंत पद्धति, लोकगीत, टोना-टोटका, पेड़-पत्तों और मिट्टी की गंध, वहां की बोली-भाषा अर्थात उक्त वैशिष्ट्य को उद्घाटित करने वाला उपन्यास निश्चय आंचलिक उपन्यास कहा जाने का अधिकारी होगा।

आंचलिक उपन्यासों का जन्म सर्वप्रथम अमेरिका में हुआ । उपन्यास में आंचलिकता का आंदोलन वस्तुतः अमेरिकी साहित्य से प्रारंभ हुआ है। सामान्यत: आंचलिक शब्द केथर , फाकनर, स्टेनवेक की रचनाओं के लिए लागू किया गया । इनका दावा है कि - "नए औपन्यासिक दृष्टिकोण का आधार संयुक्त राज्य अमेरिका के किसी खास क्षेत्र की भौगोलिक तथा आर्थिक, सांस्कृतिक खासियत है। ऐसे क्षेत्र को व्यक्त करने के लिए वैज्ञानिक माध्यम अपनाया गया है। 18वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में 'विटहार्ट' के उपन्यासों के जरिए स्थानीयता को वातावरण के रूप में ग्रहण करने की प्रथा अमेरिकी उपन्यासों में चली। वस्तुतः विटहार्ट ने ही आधुनिक आंचलिकतावाद को जन्म दिया।"[11]

भारत में आंचलिक उपन्यासों का श्रीगणेश बंगाल के श्रेष्ठ साहित्यकार शरतचंद्र के 'पल्ली समाज' से माना जाता है । सामाजिक स्थितियों का आंचलिकता की दृष्टि से बड़ा ही धार्मिक चित्रण हुआ है। बंगाल के आंचलिक उपन्यासों की तरह उड़िया भाषा में श्री गोपीनाथ मोहंती का 'अमृत संतान' उपन्यास भी अपनी आंचलिक विशेषताओं से परिपूर्ण है।

हिंदी में आंचलिक उपन्यासों का प्रारंभ डॉ . प्रताप नारायण टंडन 1925 में प्रकाशित होने वाले आचार्य शिवपूजन सहाय के उपन्यास 'देहाती दुनिया' से मानते हैं । डॉ. सत्यपाल चुघ आंचलिक उपन्यासों का प्रारंभ निराला के 'बिल्लेसुर बकरिहा' से मानते हैं , जो सन 1941 में प्रकाशित हुआ था। इसी तरह भुवनेश्वर की 'घराउ घटना', गोपाल राम गहमरी की 'भोजपुरी ठगी', बृज नंदन सहाय की 'अरण्य बाला' आदि हिंदी साहित्य में अनेक उपन्यासों का सृजन देखने को मिलता है, जिनमें आंचलिकता के वैशिष्ट्य दृष्टिगोचर होते हैं। यह बात और है कि आंचलिकता की धारा जितनी स्वातंत्र्योत्तर काल में विकसित हुई उतनी उसके पूर्व के काल में विकसित नहीं हुई।

डॉ. कांति वर्मा ने हिंदी के आंचलिक उपन्यासों के आविर्भाव के संबंध में ठीक ही लिखा है - आंचलिकता का हल्का-हल्का पुट पूर्व युग के उपन्यासों में भी मिल जाता है लेकिन उसका सशक्त एवं पूर्ण विकसित रूप स्वातंत्र्योत्तर युग के उपन्यासों में ही हुआ।"[12]

हिंदी में ग्रामीण परिवेश को लेकर जो उपन्यास लिखे गए हैं , उनमें फणीश्वरनाथ रेणु (मैला आंचल, परती परिकथा), नागार्जुन (बलचनमा, रतिनाथ की चाची, बाबा बटेसरनाथ, नई पौध), शिवप्रसाद मिश्र रूद्र (बहती गंगा), रामदरश मिश्र (पानी के प्राचीर, जल टूटता हुआ), रांगेय राघव (कब तक पुकारूं), भैरव प्रसाद गुप्त (गंगा मैया), शानी (कस्तूरी), शैलेश मटियानी (हौलदार, चिट्ठी रसैन) आदि उपन्यासकारों के उपन्यासों में अंचल, क्षेत्र विशेष, लोकजीवन, प्राकृतिक वातावरण, स्थानीय रंगत को बड़े ही बेबाक ढंग से चित्रित किया है। नगरीय पृष्ठभूमि को लेकर भी हिंदी में काफी उपन्यास लिखे गए हैं, जिनमें नगरीय - महानगरीय गहमा-गहमी को देखा जा सकता है। उपेंद्रनाथ अश्क (गिरती दोपहर), बलवंत सिंह (रात, चोर और

© RRIJM 2015, All Rights Reserved

चांद), शिवप्रसाद मिश्र (बहती गंगा), भैरव प्रसाद गुप्त (मशाल), अमृतलाल नागर (बूंद और समुद्र), हर्षनाथ (पत्थर और दूब), शैलेश मटियानी (बोरीवली से बोरीबंदर), जगदंबा प्रसाद दीक्षित (कटा हुआ आसमान) आदि बहुत से उपन्यासकारों ने नगरीय-महानगरीय जीवन संघर्ष को अपने उपन्यासों में उकेरा है।

युग और समाज के बदलाव के साथ-साथ परिस्थितियों में भी बदलाव आना स्वाभाविक है। समय और काल की स्पष्ट छाप साहित्य में देखी जा सकती है। फणीश्वर नाथ रेणु के बाद आने वाले कथाकारों ने भी आंचलिक उपन्यासों का सृजन कर हिंदी को और समृद्ध किया, भले ही उसकी गति मंद रही हो। विभिन्न अंचलों को कथाकारों ने अपने आंचलिक उपन्यासों में जिस सजीवता से रूपायित किया है, उनमें हिमांशु जोशी (सु-राज, कगार की आग), बटरोही (महर ठाकुरों का गांव), अब्दुल बिस्मिल्लाह (झीनी झीनी बीनी चदरिया), मधुकर मणि (पिंजरे में पन्ना), जगदीश चंद्र (धरती धन न अपना), विवेकी राय (सोना माटी), पंकज बिष्ट (उस चिड़िया का नाम), शिव प्रसाद सिंह (शैलूष), कृष्णा सोबती (जिंदगीनामा), संजीव (धार) आदि रचनाकारों की रचनाओं ने हिंदी साहित्य को समृद्ध करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

संदर्भ

1. साहित्य का उद्देश्य - मुंशी प्रेमचंद; पृष्ठ 54
2. हिंदी के आंचलिक उपन्यास - डॉ. विद्याधर द्विवेदी; पृष्ठ 13
3. आंचलिक उपन्यासों में नारी के विविध रूप - डॉ. नागनाथ कुंटे; पृष्ठ03
4. आंचलिक और हिंदी उपन्यास - डॉ. नगीना जैन; प्रश्न 06
5. हिंदी उपन्यास : एक अंतर्यात्रा - डॉ. रामदरश मिश्र; पृष्ठ 188
6. आंचलिकता और आधुनिक परिवेश - कल्पना मार्च 1964; पृष्ठ 29
7. प्रकीर्णका - नंददुलारे बाजपेई; पृष्ठ 81
8. हिंदी उपन्यास : एक अंतर्यात्रा - डॉ. रामदरश मिश्र; पृष्ठ 58
9. आंचलिक उपन्यास अनुभव और दृष्टि - डॉ. ज्ञानचंद गुप्त; पृष्ठ 18
10. आंचलिक उपन्यासों में नारी के विविध रूप - डॉ. नागनाथ कुंटे; पृष्ठ 20
11. हिंदी के आंचलिक उपन्यास - डॉ. विद्याधर द्विवेदी; पृष्ठ 22
12. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास - डॉ. कांति वर्मा; पृष्ठ 08

© RRIJM 2015, All Rights Reserved